———————— की तरफ से ————
अवसर पर जनता को सादर भेंट।

स्थान ————————————

ता. ————————————

लेखक की ओर से

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले प्रकृति की ओर से संसार में एक महान प्रकाश फूटा था, जिसने ७२ वर्ष तक अपनी अद्भुत चमक से संसार को प्रकाशित किया। जिस दिन वह प्रकाश आया वह चैत्र शुक्ला त्रयोदशी थी। और जिस दिन वह बुझा वह कार्तिक कृष्णा अमावस्या थी। पहली को वीरजयन्ती और दूसरी को दिवाली कहते हैं। दिवाली शायद इस लिए कि उस दिन जनता ने अध्यात्मिक प्रकाश के उठ जाने से भौतिक प्रकाश कर अपने चित्त को सान्त्वना दी थी। उस प्रकाश का नाम था **भगवान महावीर**। आज वे हमारे सामने नहीं हैं पर उनकी त्याग और साधनाओं ने उन्हें अमर बना दिया है। जवानी, प्रभुत्व और वैभव की उन्होंने जिस प्रकार होली खेली उसे कौन भुला सकता है। वे दुष्टों के निग्रह के पक्षपाती न थे, बल्कि दुष्टों को शिष्ट बना देने में विश्वास करते थे। और इसी विश्वास के अनुसार उन्होंने जीवन भर साधना की। प्राचीन पोथियों में उनकी साधनाओं के गीत बिखरे पड़े हैं ऐतिहासिकों ने उनके वंश और शिक्षाओं की तो चर्चा की है, पर उन गीतों को किसी ने संकलित करने का कष्ट नहीं किया। इस पुस्तक में भी वे नहीं के बराबर हैं फिर भी महावीर को समझने के लिये इसमें कुछ सांकेतिक सामग्री अवश्य मिलेगी, उसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने से भगवान महावीर के परोक्ष दर्शन हुए बिना नहीं रहेंगे। इसी लिए इस पुस्तक का नाम 'महावीर-दर्शन' रक्खा है।

पुस्तक कैसी है यह तो पाठक ही जानें पर इतना कह सकता हूं कि वीरजयन्ती और दिवाली आदि अवसरों पर महावीर का परिचयात्मक साहित्य जनता को न मिलने की जो शिकायत रहती थी उस दिशा में मैंने यह छोटा सा प्रयत्न किया है। आवश्यकता इस बात की है कि इस की लाखों प्रतियां आम जनता में वितरण की जांय। समय आएगा जब कोई महावीर का भक्त इसके लिए त्यार होगा।

मैं उन सभी कृपालु ग्राहकों का आभार मानता हूं जिन्होंने इस पुस्तक के तीन संस्करण हाथों-हाथ खरीद कर मेरे उत्साह को बढ़ाया है।

लालबहादुर शास्त्री,

महावीर-दर्शन

(१)

त्याग तपस्याओं का जिसका है अपना लम्बा इतिहास।
दुखी प्राणियों की ममता के और न था जिसके कुछ पास॥
वसुधा ने पाया था जिससे महा अहिंसा का वरदान।
विश्वपिता उस महावीर का करता हूं मैं गौरव गान॥

(२)

मगध देश में कुण्डलपुर था नगर एक शोभा का धाम।
वीर जन्म के लिये चुना था स्वयं प्रकृति ने जिसका नाम॥
प्रजातन्त्र था राज्य वहां का शासक थे सिद्धार्थ नरेश।
रहन सहन अपना था अपनी भाषा थी अपना था देश॥

(३)

किसी रात को रानी त्रिशला ने देखे कुछ स्वप्न विशेष।
पूछा तो गर्वित हो मनमें बोले पति सिद्धार्थ नरेश॥
देवि! तुम्हारे होगा ऐसा बालक महागुणी निष्पाप।
जग जिसकी छाया में रहकर मेटेगा अपना संताप॥

(४)

हुए मास नौ पूर्ण अवतरित हुए धरा पर वीर जिनेश।
हुआ मुदित जग, विकसित होती देख कुमुदनी ज्यों राकेश॥
उत्सव घर २ हुए सभी ने पाया जो कुछ मांगा दान।
धन्य हुए परिजन सब पाकर महावीर सा पुत्र महान॥

(५)

माता की गोदी में ऐसा लगता था यह शिशु सुकुमार।
सत्य, अहिंसा, की गोदी में बैठा हो मानों साकार॥
था उसका सौन्दर्य विश्व की सारी उपमाओं का सार।
पुण्यलोक ने पाया था यह सतयुग* का अन्तिम उपहार॥

(६)

एकबार दो धीर तपस्वी चले जा रहे थे वन में।
किसी तत्व के समाधान की चिन्ता थी उनके मन में॥
सहसा देखा महावीर को क्रीड़ाएं करते चुपचाप।
जिज्ञासा मिट गई हुआ तत्काल दूर मन का सन्ताप॥

(७)

पड़ा तभी से महावीर का सन्मति यह मंगलमय नाम।
बहुत दिनों से 'वर्द्धमान' भी थी उनकी संज्ञा अभिराम॥
जनता ने पर 'महावीर' ही में उनका परिचय पाया।
उसी नाम से सब का अबतक आकर्षण होता आया॥

(८)

एक बार जब खेल रहे थे सहयोगी सब राजकुमार।
पहुंचे उनके साथ खेलने महावीर भी परम उदार॥
वृक्ष खड़ा था वहीं एक, चढ़ गए सभी उसके ऊपर।
सहसा दिया दिखाई आता उन्हें एक काला अजगर॥

* चतुर्थ काल

(९)

आकर लिपट गया वह नीचे उसी वृक्ष के चारों ओर।
कूद कूद कर भाग गए डर से सब बालक घर की ओर॥
महावीर इस दुर्बलता को सह न सके मन के अन्दर।
जहां सर्प था उसी राह से उतरे वे निर्भय होकर॥

(१०)

धीरे धीरे महावीर ने यौवन में फिर किया प्रवेश।
अनुभव और विवेक आदि भी पहले से कुछ बढ़े विशेष॥
बाल चपलता गयी, लगी रहने अब मुख मुद्रा गंभीर।
राज सुलभ सब भोगों में मन हुआ न उनका कभी अधीर॥

(११)

बोले आकर पिता एक दिन महावीर से यों वाणी।
पुत्र! पिता होकर भी हूं मैं निकट तुम्हारे लघु प्राणी॥
पर ममतावश आया हूं कुछ कहने आज तुम्हारे पास।
पुत्रवधू के बिना महल में सूना है सारा रणवास॥

(१२)

तुम्हें विवाहित देख सभी को होगा मनमें हर्ष अपार।
क्या न बहू पर करने दोगे मां को अपना सहज दुलार॥
नाथवंश की रक्षा के अब तुम ही हो वाले आधार।
अतः विवाहित जीवन तुमको करना होगा सुत स्वीकार॥

(१३)

महावीर ने कहा पिता! यदि पुत्र और पत्नी का प्यार।
बांट सकूं जग को तो बोलो कैसा होगा यह व्यवहार॥
दुखी विश्व को रक्षा पाने का यदि मुझसे है अधिकार।
तो यह उचित न होगा मुझको करना अपना सीमित प्यार॥

(१४)

भावपूर्ण उत्तर यह सुन कुछ कह न सके सिद्धार्थ नरेश।
लौट गए देखा अब सुत से कहने को कुछ रहा न शेष॥
मां तब आई पुत्र निकट निज आँखों में आंसू लेकर।
कहा न बेटा दुखी करो अब यों रूखा उत्तर देकर॥

(१५)

एक एक दिन गिन कर पूरा समय किया अब तक मैंने।
अब तुम हुए विमुख जब आया समय बहू का सुख देने॥
अन्य राजवधुओं को जब मैं देखूंगी रुन झुन चलते।
क्या तब देख सकोगे मुझमें दुखके अंगारे जलते॥

(१६)

सुन ये ममता भरे वचन यों महावीर बोले युवराज।
माँ! क्यों बना रही निज सुत को पत्नी पुत्रों का मुँहताज॥
उत्सुक है जो दुखी प्राणियों का करने दुख से उद्धार।
क्या तुम देख सकोगी उसको एक बहू को करते प्यार॥

(१७)

महावीर ने किया न यों जब निज विवाह करना स्वीकार।
माता पिता हुये दोनों तब अपने मन में दुखी अपार॥
था उपाय लेकिन न और कुछ थक कर बैठ गए चुपचाप।
बोले अब सहना ही होगा जीवन भर यह अन्तस्ताप॥

(१८)

महावीर, अब इधर और भी पहले से ही गए उदास।
उन्हें दिखाई दिया धर्म के भीतर चारों ओर विनाश।
कहीं मूक पशुओं की गर्दन पर चलती देखी तलवार।
कहीं धर्म की जड़ में देखा एक घृणा को ही आधार॥

(१६)

कहीं लोक सेवा के बदले जन्मजात पूजा देखी।
कहीं धर्म गुरुओं से बेचारी जनता शोषित देखी॥
कहां मठों के पर्दे में देखे सुन्दर प्रसाद विशाल।
कहीं भूख से पीड़ित देखे राजपथों पर नरकंकाल॥

(२०)

जड़ पूजा में छिपा हुआ मानवता का देखा उपहास।
था मनुष्य गृहहीन देवताओं के थे सुन्दर आवास॥
धर्म लोटता फिरता था धन के चरणों में बनकर दास।
राजाओं के लिये बचा था काम एक ही भोग विलास॥

(२१)

नारी पर यद्यपि न आज के से होते थे अत्याचार।
पर ईश्वर के निकट शूद्र से अधिक न थे उनके अधिकार॥
जीवन के उत्थान पतन में ईश्वर का ही कह कर हाथ।
अकर्मण्य बनकर जनता ने छोड़ दिया था श्रम का साथ॥

(२२)

देख दशा यह बुरी देश की महावीर थे दुखी महान।
सतत सोचते थे कब होगा जग के इस दुख का अवसान॥
पर महलों का बंधन उनको ला न सका जनता के बीच।
यद्यपि निज कर्तव्य प्रेरणा उन्हें रही थी बाहर खींच॥

(२३)

एक बार जब इसी तरह थे महावीर चिन्ता में लीन।
आये उनके पिता पास लेकर मन में उत्साह नवीन॥
बोले पुत्र! आज फिर आया हूं कहने कुछ अपनी बात।
क्या न देखने दोगे मुझको नाथवंश का स्वर्ण प्रभात॥

(२४)

वृद्ध हो चला हूं अब शासन का न सम्हाला जाता भार।
देख रहे हो गृह कामों में भी तुम मेरा शिथिलाचार॥
इच्छा है बस तुम्हें राज सिंहासन पर देखूं आसीन।
करूं आत्म कल्याण स्वयं मैं शासन से होकर स्वाधीन॥

(२५)

तुम वयस्क हो और प्रजा भी रखती है तुम में अनुराग।
अविवाहित रहकर भी तुमने किया पुत्र! जनहित में त्याग॥
शासन और प्रजा दोनों का तुमसे जो होगा उपकार।
सदा प्रभावित होगा उससे युग युग तक भावी संसार॥

(२६)

सुनकर वचन पिता के बोले महावीर यों परम उदार।
पिता! न मानव को मानव पर शासन का कुछ है अधिकार॥
स्वयं देख सुनकर भी शोषित दुखी जगत का हाहाकार।
कौन मनस्वी सिंहासन अपनाने को होगा तय्यार॥

(२७)

देख रहा हूं एक ओर में क्षुधा प्रपीड़ित नरकंकाल।
उधर दूसरी ओर खड़े हैं यहीं राजप्रासाद विशाल॥
अगर राजसिंहासन देते हैं जग को ये ही उपहार।
तो न पिता है मुझे आपकी आज्ञा कैसे भी स्वीकार॥

(२८)

यही राजसिंहासन दिखलाते जब अपना रूप विशाल।
तभी एक पर एक विश्व में महायुद्ध होते विकराल॥
अगणित अबलाओं के इनमें हो जाते हैं भस्म सुहाग।
प्रभुता का मद यहीं खेलता है खुलकर जनता से फाग॥

(२६)

यही राजसिंहासन हैं वे! जिनका है केवल आधार।
भूख, गरीबी, शोषण बेकारी, मनमाने अत्याचार।
यहीं जन्म लेते हैं रावण यहीं पनपते भोग विलास॥
यहीं मनुज दानव बन करता है मनुष्यता का उपहास॥

(३०)

यहीं महाभारत होते हैं होते यहीं खुले व्यभिचार।
यहीं तात! संरक्षण पाता पूंजीपतियों का संसार।
यहीं किसानों, मजदूरों, पर होते हैं नित वज्रप्रहार।
यहीं न्याय का थोड़े से पैसों में होता है व्यापार॥

(३१)

बने हुए हैं आज राजसिंहासन जनता को अभिशाप।
पिता! बताओ कैसे लूं मैं सिर ऊपर अपने यह पाप॥
जनता में रहकर ही जनता का करना होगा उद्धार।
कौन मनुज बोलो तो जग में वैभव पाकर हुआ उदार॥

(३२)

महावीर बस इतना कहकर बैठ गए होकर गंभीर।
पिता न आगे बोल सके पर मन में अतिशय हुए अधीर।
त्रिशला ने भी सुना किन्तु कुछ कह न सकी होकर निरुपाय।
दोनों माता पिता पुत्र को समझाने में थे असहाय॥

(३३)

एक बार कुछ सोच रहे थे महावीर बैठे चुपचाप।
सहसा दिया सुनाई कानों में पशुओं का मूक विलाप॥
देखा उठता हुआ गगन में धूंए का नीला गुब्बार।
जली हुई मज्जा की महकों में आई दुर्गंध अपार॥

(३४)

महावीर को हुआ हृदय में महा वेदना का आभास।
बोले मन में अब न उचित है मुझको इन महलों का वास॥
जीवित रहते हुए न अब यह देख सकूंगा और विनाश।
मिट जाऊंगा स्वयं बदल दूंगा या जनता का विश्वास॥

(३५)

कर विचार मन में यों उठकर खड़े हुए त्रिशला के लाल।
थे शरीर पर आभूषण जो वहीं उन्हें छोड़ा तत्काल॥
बिना किसी से कहे सुने वे निकले महलों से बाहर।
दौड़ गई बिजली सी कुण्डलपुर में चारों ओर खबर॥

(३६)

खड़ी हो गई राजपथों पर जनता की झट भीड़ अपार।
झांक रही थीं छज्जों पर से महिलाएं भी बारंबार॥
देखा सबने चला जा रहा है निज धुन में राजकुमार।
दृढ़प्रतिज्ञ है स्वयं उठने को मानों पृथ्वी का भार॥

(३७)

देख उन्हें जनता के मन में तरह तरह के उठे विचार।
लगे सोचने सभी 'राज महलों में क्या कुछ हुआ बिगार ?:
इतने ही में राजघोषणा हुई राजमन्दिर के पास।
'जनता के हित में कुमार ने छोड़ा है महलों का वास'॥

(३८)

धन्य धन्य कह उठे सभी ने महावीर की जय बोली।
अभिवादन करने को उनका घिर आई जनता भोली॥
कहा एक स्वर से सब ने यों 'चिरंजीव हो राजकुमार'।
राज पाट सब छोड़ पा सका जनता का जो सहजदुलार॥

(३६)

महावीर चुपचाप उधर जब चले जा रहे थे वन को।
देखा राजपथों पर दुखिया भूखों के नंगे तन को॥
बड़ी वेदना उनके मन में तुरत उन्हें आया यह ध्यान।
है न उचित मुझको रखना अब तन पर वस्त्रों का परिधान॥

(४०)

इसी सोच में महावीर ने चल कर वन में किया प्रवेश।
पहुंचा उनके पीछे पीछे जनता का समुदाय विशेष॥
दिया खड़े होकर तब सबको महावीर ने यह संदेश।
'जाओ यह करना प्रयत्न पहुंचे न किसी को तुमसे क्लेश'॥

(४१)

'क्या यह संभव है, न किसी को पहुंचे कभी किसी से क्लेश'।
किया किसी ने जनता में से उसी समय यह प्रश्नविशेष॥
'सुनते हैं कि महापुरुषों ने पहले भी लेकर अवतार।
साधु जनों की रक्षा की थी दुष्टों पर कर असुर प्रहार'।

(४२)

महावीर ने कहा न इससे दुष्टों का होता उपकार।
अगणित दोषों का निवास है यह गरीब मानवसंसार॥
अगर दुष्ट को शिष्ट कर लिया जावे कर समुचित व्यवहार।
दुष्ट जनों का और न इससे बढ़ कर होगा उचित सुधार॥

(४३)

एकबार फिर बोला सबने महावीर का जय जयकार।
गूंज उठा कानन, उसने भी किया प्रतिध्वनि से सत्कार॥
एक एक कर महावीर ने दिए वस्त्र फिर सभी उतार।
स्वच्छ शिला के ऊपर जाकर बैठ गए योगासन धार॥

(४४)

अपने ही हाथों से अपने केश उन्होंने लिये उखाड़।
दुष्प्रवृत्तियों को मानों था उसी समय से दिया उखाड़॥
आत्म-निरीक्षण में फेर ऐसे डूब गए होकर गम्भीर।
दो दिन तक बस उसी तरह से निश्चल उनका रहा शरीर॥

(४५)

देख उन्हें यों लीन ध्यान में जन समूह ने किया प्रणाम।
लौट चले फिर घर को उनकी करते हुए कथा अभिराम॥
धन्य रूप यह धन्य जवानी धन्य धन्य यह त्याग महान।
किया नगर की जनता ने यों अपने नेता का गुण गान॥

(४६)

किसी तरह से भंग हुई उनकी समाधि, तब उठकर धीर।
गए नगर की ओर, लिया भोजन में थोड़ा सा गोक्षीर॥
लौट पुनः आए वन में वे उसी जगह सिद्धार्थकुमार।
कुछ दिन रहकर किया वहां से भी उनने अन्यत्र विहार॥

(४७)

इसी तरह बस सदा वनों में ही रहता था उनका वास।
करुणाप्लावित हृदय छोड़कर और न था उनके कुछ पास॥
कभी मिल गया तो कर लेते थे रूखा सूखा आहार।
वह भी ऐसे समय मास में आते थे केवल दो चार॥

(४८)

प्रायः सारे समय साधना में ही रहते थे तल्लीन।
रखते थे आचरण सदा वे अपना अपने ही आधीन॥
भूख प्यास की बाधाएं कर सकीं न उनको लक्ष्य विहीन।
पथ पर बढ़ने को पाया नित अपने में उत्साह नवीन॥

(४९)

एकबार जब ध्यान मग्न थे महावीर बैठे वन में।
देख उन्हें कापालिक * कोई क्रुद्ध हुआ अपने मन में॥
आंधी चला जोर की कंकड़ पत्थर उसने बरसाये।
भूत प्रेत डाकिन चुडैल के रूप भयानक दरसाए॥

(५०)

उठी घटाएं काली काली हुआ अंधेरा चारों ओर।
लगी चमीकने विद्युत उपर कड़ कड़ शब्द हुआ घनघोर॥
महावीर विचलित न हुए वे रहे आत्मचिन्तन में लीन।
आया तब कापालिक उनके चरणों में मुख लिए मलीन॥

५१)

कहा मुझे अब क्षमा कीजिये नाथ! हुआ जो कुछ अपराध।
देख रहा हूँ पाप स्वयं का और आपकी क्षमा अगाध॥
अब तक चाहा जिसे उसी को पहुंचाया मैंने यमद्वार।
किन्तु आज पाई है मैंने प्रथम बार तुमसे यह हार॥

(५२)

देख दूर उपसर्ग वीर ने किए पलक अपने ऊपर।
कहा न कापालिक! घबडाओ विचरो तुम निर्भय होकर॥
कभी आज से किसी जीव को कष्ट सर्वथा मत देना।
अगर बन पडे तो औरों के देकर अभय सुयश लेना॥

(५३)

कापालिक ने कहा तपस्वी! हुआ आज मुझको सद्बोध।
धन्य तुम्हारा हृदय किसी के लिए न जिसमें है प्रतिशोध॥
यों कह उसने महावीर के हाथ जोड़कर किया प्रणाम।
बन कृतज्ञ मन म उनका यह लौट गया फिर अपने धाम॥

* ग्यारहवाँ रुद्र।

(५४)

महावीर भी उठे वहां से किया कहीं अयन्त्र विहार।
कापालिक की तरह घूमकर किया अनेकों का उद्धार॥
सहने लगे निरंतर अब वे जान बूझकर कष्ट अपार—
लाने को दृढ़ता अपने में यद्यपि थे तन से सुकुमार॥

(५५)

कभी पर्वतों की चोटी पर उन्हें ध्यान करते देखा।
कभी गुफाओं में एकाकी लीन साधना में देखा॥
तप्त शिलाओं पर लोगों ने कभी उन्हें बैठे पाया।
हिमकुहरों में खड़ी कभी देखी उनकी सुन्दर काया॥

(५६)

कभी मरघटों में आकर वे घोर तपश्चर्या करते।
नदी तटों पर बैठ कभी वे अपना हितचिन्तन करते॥
आते उनके निकट वन्य पशु और बैठ जाते चुपचाप।
मानो करते थे अतीत जीवन पर अपने पश्चात्ताप॥

(५७)

तपश्चरण करते यों उनको हुआ एक युग का अवसान।
सहे सभी जो आए उन पर कष्ट और उपसर्ग महान॥
एकबार जब आत्मध्यान में डूब रहे थे वे मतिमान।
हुआ प्रकट सरिता* तट पर तब उन्हें यकायक केवलज्ञान॥

(५८)

देखा उस अद्भुत प्रकाश में महावीर ने सब संसार।
अनेकान्त सा दर्शन उनको मिला तत्वनिर्णय का द्वार॥
स्याद्वार सी मिली कसौटी मतसहिष्णुता का आधार।
धर्म अहिंसा पाया अद्भुत प्राणिजगत के सुख का सार॥

* ऋजुकूला नदी।

(५६)

सुना जगत ने महावीर अब हुए सर्वदर्शी भगवान।
जनसमुद्र सब उमड पडा करने ,को उनका मंगलगान॥
मूक प्रेरणा पाकर पशु पक्षी भी पहुंच गए सारे।
मिल कर खूब लगाए जनता ने उनकी जय के नारे॥

(६०)

धर्मसभा फिर जुडी एक सब बैठ गए उसमें जाकर।
उसी समय आया द्विज कोई विद्या से गर्वित होकर॥
लगा गरजने कौन यहां है देखूं जन प्रतिभाशाली।
प्रकट कर सके जो समक्ष मेरे अपनी गौरव लाली॥

(६१)

कह कर यह यों गया सभा के अन्दर करने वाद विवाद।
दिए दिखाई वहां पीठ* पर वीर प्रभू के पावन पाद॥
हुआ दूर अभिमान हो गया वह पंडित पानी पानी।
था वह उसी नगर का वासी इन्द्रभूति गौतम ज्ञानी॥

(६२)

वहीं प्रव्रज्या* लेली उसने महावीर के जाकर पास।
और बन गया उनका पहला गणधर कर श्रुत का अभ्यास॥
सिंहासन पर महावीर थे नीचे थे गौतम गणधर।
शेष सभा के लिए बैठने को थे निर्मित बारह-घर॥

(६३)

हुआ दिव्य उपदेश वीर का निकली यों मुख से वाणी।
है यह विश्व अपरिमित इसमें स्वयं उठाता दुख प्राणी।
अगर स्वयं जीवित रहने का हमको है अपना अधिकार॥
क्यों न यही दावा तब औरों का हम करते हैं स्वीकार।

*सिंहासन। दीक्षा।

(६४)

क्या मनुष्य की तरह न अपना जीवन है पशु को प्यारा ?
क्यों फिर झोंक हवन कुण्डों में वह दुखिया जाता मारा॥
दिया प्रकृति ने मानव के हाथों में पशु रक्षा का भार।
क्या है उचित चलाना उसको निज शरणागत पर तलवार॥

(६५)

देता है ईश्वर न किसी को निर्धनता या द्रव्य अपार।
हैं अपने ही कर्म हमारे दुख अथवा सुख के आधार॥
अपने पर विश्वास करो पहिचानो अपनी शक्ति अपार।
चाहोगे तो बनजाओगे तुम्हीं कभी ईश्वर अवतार॥

(६६)

वस्तु एक है दृष्टि भेद से हो जाती वह विविध प्रकार।
बिना उसे समझे लड़ता है यों ही यह मानव संसार॥
अगर एक ही जन में हो सकता है पुत्र पिता व्यवहार।
तो हम और विरोधी बातें भी कर सकते हैं स्वीकार॥

(६७)

सम्यग्दर्शन ज्ञान और चरित्र मुक्ति के हैं साधन।
इनके बिना न तोड़े जा सकते अनन्त भव के बन्धन॥
वही साधु चर्या है अपनेपन * का जहां न है आभास।
सदा त्याग में ही जीवन है और मरण है भोग विलास॥

(६८)

सुनकर यह उपदेश वीर का गद् गद हुए सभी प्राणी।
अगणित कंठों से निकली ध्वनि धन्य २ यह जिनवाणी॥
किया किसी ने वहीं तपस्वी जीवन उसी समय स्वीकार।
सदाचार से रहने का प्रण किया किसी ने अंगीकार॥

* ममत्व भाव।

(६६)

देख शांत छवि महावीर की पशुओं को भी हुआ सुबोध।
छोड़ दिया बहुतों ने उनमें आपस में करना प्रतिरोध॥
जगह जगह मिटगई यज्ञशालाएं यूप * हुए बेकार।
लगा विचरने निर्भय होकर पशु पक्षी मानव संसार॥

(७०)

काशी कोशल अंग बंग कुरुजांगल और कलिंग प्रदेश।
कामरूप कर्णाटक मथुरा सिन्धु और पश्चिम के देश॥
महावीर ने तीस वर्ष तक सभी जगह कर सुखद प्रचार।
ध्वजा अहिंसा की फहरादी और किया जग का उपकार॥

(७१)

पावा में आकर फिर प्रातःकाल हुआ उनका निर्वाण।
किया जगत ने अपने को अनुभव उनके दुख में निष्प्राण॥
ज्ञानदीप बुझ गया दिवाली कर तब किया प्रकाश महान।
मंगलमय हों सदा विश्व में सबके महावीर भगवान॥

* पशुओं के बांधने के लिए यज्ञस्तंभ।

विवाह शादियों में वितरण करने योग्य अनुपम भेंट

बेटी की विदा

[विवाह के समय परिवार के आन्तरिक भावों का प्रदर्शन]

विवाह

[वर वधू के भावों का सुन्दर विश्लेषण]

जीवन साथी

[वरवधू के आत्मसमर्पण की गाथा]

विदा की वेला

[बेटी की ममता का मार्मिक चित्रण]

किसी भी पुस्तक की १०० प्रति का २१), पचास का ११) पच्चीस का ६) एक प्रति का।-) डाक खर्च पृथक्।

उपर्युक्त पुस्तकों में जो सज्जन वर या कन्या अथवा दोनों चित्र छपाना चाहते हैं तो लागत चार्ज लेकर वैसा करदिया जायगा। इसके अतिरिक्त वितरणकर्ता यदि अपना या फर्म का नाम पुस्तक पर छपाना चाहेंगे तो २५० प्रतियां लेने पर उनका नाम बिना किसी चार्ज के छपा दिया जायगा।

व्यवस्थापक—
नलिनी सरस्वती मंदिर